श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग
परमहंस श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज
द्वारा प्रणीत

प्राणापान स्मृति

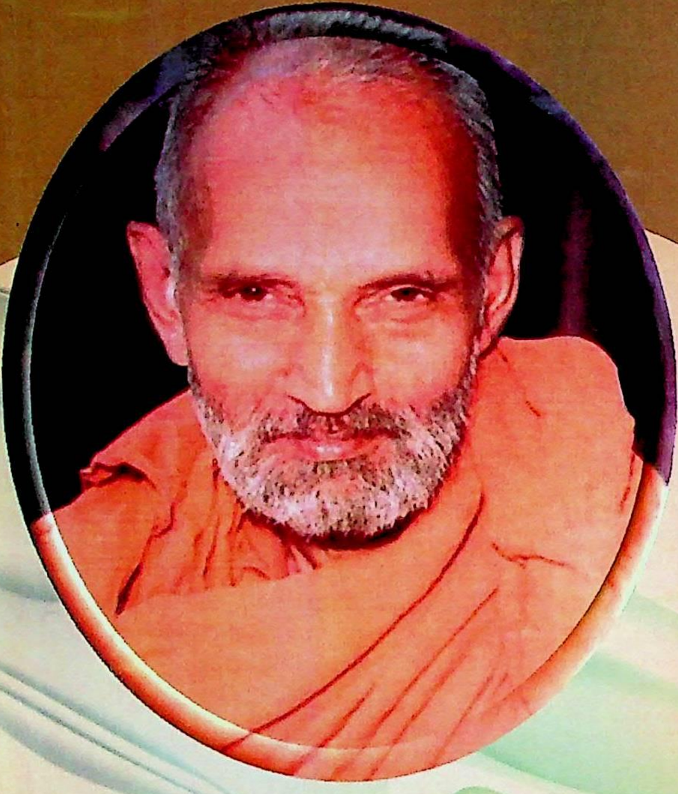
व्याख्या एवं क्रियात्मक विधि

(In Hindi & English)



प्रकाशकः
अम्बाला व अन्य स्थानों के धर्म प्रेमी समुदाय
एवं स्वामी जी के भक्तों द्वारा प्रकाशित

मूल्य : श्रद्धा-भावपूर्वक अध्ययन, मनन एवं आचरण



His Holiness

Swami Dayanand 'Giri' Ji Maharaj

(19th March 1919 - 23rd Nov., 2014)

ॐ

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग
परमहंस श्री स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज
द्वारा प्रणीत

प्राणापान स्मृति

व्याख्या एवं क्रियात्मक विधि

(In Hindi & English)

प्रकाशकः
अम्बाला व अन्य स्थानों के धर्म प्रेमी समुदाय
एवं स्वामी जी के भक्तों द्वारा प्रकाशित

मूल्य : श्रद्धा-भावपूर्वक अध्ययन, मनन एवं आचरण

(निःशुल्क वितरणार्थ)

प्रथम संस्करण : गुरु पूर्णिमा, जुलाई 27, 2018
द्वितीय संस्करण: जुलाई 2022

Available from:
1. **G.C. Garg**
99, Preet Nagar
Ambala City-134003 (Haryana)
Ph. 0171-2552761

ज्ञान चन्द गर्ग
99-प्रीत नगर
अम्बाला शहर-134003 (हरियाणा)
दूरभाष : 0171- 2552761

मुद्रण :
महाजन एण्टरप्राइज़िज
अम्बाला छावनी

ॐ नमो नारायाणाय नमः

भूमिका

उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्रों में तथा भगवान् गौतम बुद्ध आदि महापुरुषों के वचनों में आध्यात्मविद्या का जो ज्ञान है, और जिसे *करुणाशील स्वामी दयानन्द 'गिरि' जी महाराज* ने इस युग के मानव के कल्याण हेतु अपने ग्रन्थों–**आध्यात्मिक जीवन पद्यावली**, **आध्यात्मिक प्रवचन संग्रह** और **आध्यात्मिक जीवन पद्यावली की कतिपय आवश्यक संज्ञाओं का विशद विवरण**– में उपलब्ध कराया है। वह ज्ञान प्रयोगात्मक है अर्थात् वह जीवन में उतारने का है, उसके अनुसार जीवन सुधारना है, जीवन बदलना है, जीवन को शुद्ध बनाना है। यह अध्यात्म संबंधी ज्ञान है, जिसका लक्ष्य अधयात्म विकास है।

'अध्यात्म' का अर्थ है अपना आपा जिसमें तन, मन और आत्मा का समावेश है। आत्मा तो नित्य शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानन्द स्वरूप है। जो विकार ग्रस्त है, जिसमें अशुद्धि है, जिसे शुद्ध करने की आवश्यकता है वह तो तन और मन है। अध्यात्म साधना इसी के लिए की जाती है। अध्यात्म साधाना में हिंसा आदि पापकार्मों से बचकर बाह्य आचरण को शुद्ध करते हुए तथा राग, द्वेष आदि मानसिक बन्धनों और ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर, काम, क्रोध, लोभ आदि विकारों से मुक्तकर मन को निर्मल बनाने का अभ्यास किया जाता है। यह सब किस प्रकार किया जा सकता है, इसे स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में बहुत विस्तार से समझाया है। जो साधक स्वामी जी के ग्रन्थों का अध्ययन से स्वाध्याय करते है, उसे ऐसा अनुभव होता है कि

स्वामी जी उसकी उंगली पकड़कर साधना पथ पर अनेक विघ्नों से बचाते हुए और गिरने से सावधान करते हुए ले जा रहे हैं।

इसी साधना के संदर्भ में स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर साधना की एक अत्यन्त प्रभावी क्रिया का विवेचन किया है। इस क्रिया का नाम है **प्राणापानस्मृति**। **प्राणापान स्मृति प्राण** और **अपान** की स्मृतिपूर्वक क्रिया है। इस क्रिया को शरीर के अंगों को पुष्ट करने, भोजन पचाने सहायक होने और मन को बन्धनों और विकारों से मुक्त करने में अत्यन्त प्रभावी बताया है। यह क्रिया प्राण और अपान को सम करने की है। ऐसे अभ्यास के दीर्घकाल तक करते रहने से शनैः शनैः मन इन सब राग, द्वेष, मान मोह तथा अविद्या आदि से मुक्त होकर संसार में भी जीवन मुक्ति की तृप्ति तथा आनन्द को अनुभव करेगा। **भगवान् श्री कृष्ण** ने **श्रीमद्भगवद्गीता** में दो स्थलों–एक अध्याय 5 श्लोक 27 में- प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाम्यन्तरचारिणौ - और दूसरे अध्याय 15 श्लोक 14 - प्राणापान समायुक्तः **पचाम्यन्नं चतुर्विधम्** - में इस क्रिया का ही कथन किया है। **भगवान् बुद्ध** ने साधना में प्राणापानस्मृति (अनापान स्मृति) की क्रिया को बहुत महत्वपूर्ण बताया है। बौद्ध साधना में जिन **कर्मस्थानों** (क्रिया विशेष को करना) के सेवन को उपकारी बताया है, उनमें अनापान स्मृति का प्रथम स्थान है। इस कर्म स्थान की भावना (निरन्तर अभ्यास) के बारे में यह कहा गया है कि पाप, अकुशल धर्म (अहितकर गुण और विचार) ज्यों ही उत्पन्न होते हैं त्यों ही लुप्त हो जाते हैं।

"प्राण" और "अपान" श्वांस की विरोधी क्रियाओं के वाचक हैं लेकिन इनके अर्थ के संबंध में मतभेद देखने में आता है। कुछ कहते हैं कि बाहर से जो श्वास अन्दर किया जाता है वह प्राण है और इसका विरोधी अपान है। लेकिन इसका शास्त्रीय प्रामाणिक अर्थ यह है कि जो श्वास बाहर जाता है वह प्राण और जो बाहर से अन्दर किया जाता है वह अपान है। शास्त्रों के ज्ञाता स्वामी जी ने इनका यही अर्थ लिया है। इस विचार के संदर्भ में पाठकों की संभावित शंका के निवारण हेतु **गीता** के श्लोक 4-29 पर भगवान् शंकराचार्य के भाष्य का अंश यहाँ उद्धरित है:..... **प्राणापान गति..... मुखनासिकाभ्यां वायोः निर्गमनम् प्राणस्य गतिः तद्विपर्पयेण अधोगमनम अपानस्य** यह क्रिया जितनी महत्वपूर्ण है उतनी कठिन नहीं है। लेकिन कोई भी क्रिया आती तो करने के अभ्यास से ही है। जो कोई इस क्रिया को करता है, उसका लाभ वह स्वयं अनुभव करता है।

यह प्राणापान की क्रिया जीवन काल में ही मुक्ति पाने के लिये या मुक्ति केअनुकूल जीवन बनाने के लिये मुख्य साधना का ही एक अंग है। इस क्रिया के महत्त्व को समझते हुए **श्री ज्ञानचन्द गर्ग जी ने प्राणापान स्मृति** को स्वामी जी के ग्रन्थों से निकाल कर अलग से प्रकाशित करने का बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है। वे सब साधकों के साधुवाद के पात्र हैं।

बाँके लाल शर्मा

प्राणापान स्मृति

(Mindful Respiration / Minful Breathing)

'प्राणापान स्मृति' शब्द समुदाय का अर्थ है कि 'प्राण तथा अपान' रूप श्वास की क्रिया में अपनी स्मृति को स्थिर करना या लगाये रखना। इससे प्राण और अपान क्रिया को सम करने या रखने का अभ्यास होगा। श्रीमद्भगवद्गीता में इस अभ्यास को प्राण और अपान को सम करने के नाम से कहा गया है। इसी श्वास के अन्दर आने और बाहर जाने की क्रिया में मन की स्मृति (याद) या ध्यान इतना टिकाये रखना है कि इस क्रिया में लगा हुआ मन अपने सब संशय, काम, क्रोध आदि विकारों को टालता हुआ संसार बन्धन से मुक्त होता हुआ श्वास को लेने तथा छोड़ने का अभ्यास करवा सके। इस क्रिया के भली प्रकार से होने पर मनुष्य के सब अंग तथा उपाङ्ग भली प्रकार अपना कार्य करते हुए, मनुष्य के देह को भी स्वस्थ तथा शान्त रखेंगे। बाह्य सामाजिक जीवन भी भली प्रकार से दूसरों में बिना विरोध आदि भावों के सुखी होगा।

इस क्रिया को करने के लिये साधक पुरुष को प्रथम इस बात को ध्यान में रखना होगा कि जो श्वास अन्दर आये या खींचा जाये वह स्मृति या याद को रखते–रखते ही अन्दर लिया जाये; वैसे ही स्मृति या ध्यान को टिकाये

रखकर ही बाहर छोड़ा जाये। स्वभाव से सब प्राणियों से श्वास भूले–भूले ही लिया या छोड़ा जाता है। संसार के बहुविध स्वार्थ; चिन्ता, भय, काम, क्रोध आदि अनन्त मन के विकारों के साथ इन्हीं सब के मिथ्या कर्तव्यों में भूला–भूला जन श्वास अन्दर खींचता है तथा इसे बाहर फैंकता है। वैसे ही निद्रा में पड़ा प्राणी भी श्वास तो लेता तथा छोड़ता ही रहता है; परन्तु यह सब श्वास क्रिया मनुष्य की स्मृति या याद को संग रखकर नहीं है। यह केवल सब प्राणियों में जीवन देने वाली चेतन की शक्ति ही करती है। परन्तु साधक पुरुष को इसी जीवन शक्ति को मुक्त मन से धारण करना है; अर्थात् श्वास को अपनी स्मृति या होश बनाये या सम्भाले रखकर करना है। इससे शनैः–शनैः क्रम से स्थायी रूप से सब जगत् में बाँधने वाले राग, द्वेष, मान, मोह आदि बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करके परमानन्द में स्थायी वास पाने की पूर्ण योग्यता प्राप्त होगी; तथा वैसी अवस्था को प्राप्त करने वाले देही या मनुष्य को अति उत्तम अन्दर की विद्याओं के साथ–साथ स्वास्थ्य का भी लाभ होगा।

इस प्राणापान स्मृति रूप क्रिया को करने के लिये मनुष्य को थोड़ा आसन को स्थिर रखने या करने का अभ्यास भी करना होगा। इस क्रिया को भली प्रकार से करने के लिए पद्मासन अति उत्तम है। यदि इस आसन पर अधिक समय तक न बैठा जा सके तो प्रथम साधारण

स्वस्तिक आसन पर ही सिर, गर्दन और शरीर को सीधा रखते हुए बैठ कर इस क्रिया को करना आरम्भ करे। इस क्रिया को करने का समुचित समय तो भोजन उपरान्त ही है। भोजन कर लेने के अनन्तर यथायोग्य अल्प आराम करने के पश्चात् या भोजन करने के पश्चात् कभी भी इस साधन में यथासम्भव समय के लिये बैठा जा सकता है। यदि वात और रोग के कारण आसन पर न बैठा जा सके तो कुर्सी पर भी पीठ आदि सीधी रख कर बैठा जा सकता है। प्रथम इस क्रिया का आरम्भ इस प्रकार से होगा कि जो श्वास अन्दर लिया जा रहा है वह स्मृति या याद या समझ के साथ ही लिया जा रहा है और समझ तथा होश या स्मृति के साथ ही छोड़ा जा रहा है। साधक को इस बात का ध्यान रखना है कि अपनी इच्छा से श्वास को न तो लम्बा खींचने का यत्न करे, न छोटा ही, और न रोके ही। जैसा भी श्वास आना व जाना चाहे वैसा ही ले। अपने आप श्वास लम्बा, छोटा कैसा भी आये व जाये, परन्तु साधक अपने यत्न से उसे विक्षिप्त न करे। परन्तु इतना अवश्य होना चाहिए कि श्वास लेने और छोड़ने को स्मृतिपूर्वक (याद को रखकर) करे। समझते–समझते श्वास लेना और समझते–समझते श्वास छोड़ना, इस प्रकार कुछ एक श्वास लेने और छोड़ने के अनन्तर पुनः अपने शरीर को भी

समझते–समझते श्वास लेना और छोड़ना आरम्भ करना है। इसका तात्पर्य यह है कि जेसे सारे शरीर से ही श्वास लिया जा रहा है और सकल शरीर ही श्वास छोड़ने का कर्म कर रहा है। इस प्रकार कुछ एक श्वास लेने और छोड़ने के पश्चात् पुनः देह के अन्दर के एक–एक अंग की स्मृति रखते–रखते श्वास लेने और छोड़ने का यत्न रखे। प्रथम, देह में पेट से आरम्भ किया जा सकता है। पेट में खाया हुआ अन्न पड़ा है; उसी खाये हुए अन्न का भार भी मनुष्य प्रतीत या महसूस करता है। उसी पेट के स्थान से, अन्न के भार को महसूस करता हुआ साधक पुरुष श्वास लेवे और छोड़े। इसी प्रकार कुछ एक, दो तीन या अपने बैठने के समय के अनुसार स्वयं जितने श्वास ले सके लेवे और छोड़े। पेट के पश्चात् दूसरे सब अन्दर के अंगों की भी स्मृति या याद रखता हुआ दो–दो या तीन–तीन श्वास लेता छोड़ता हुआ इस क्रिया में व्यस्त रहे। इस से शनैः–शनैः संसार को तथा बाहर के सब व्यवहार को मन भूल कर इस क्रिया को करने में जागता रहेगा। पेट के साथ लम्बी आँत है, पुनः उसी में छोटी आँत भी बसी है। जिगर, तिल्ली, गुर्दे और वैसे ही फुसफुस (फेफड़े) और हृदय तथा सिर में मस्तिष्क (दिमाग) इन सब अन्दर के अंगों की स्मृति रखता हुआ साधक श्वास लेने तथा छोड़ने

का अभ्यास करे। यदि कोई अधिक समय तक बैठ सके तो बाहों, टांगों आदि की भी स्मृति रखता हुआ दो–दो चार–चार श्वास लेवे और छोड़े। और भी जो देह में रक्त, मज्जा, मांस, अस्थि, चर्म और रस आदि धातु हैं इन सब की स्मृति रखते–रखते श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास करने से अति अधिक लाभ होता है। यह सब देह या देह के अंग और उपाङ्गों को ध्यान में रखकर श्वास लेना और छोड़ना इस क्रिया का प्रथम चरण है।

अब इस प्राणापान क्रिया का दूसरा चरण, देह को भूलते–भूलते श्वास लेने और छोड़ने से आरम्भ होता है। अर्थात् जिस प्रकार प्रथम चरण में देह की या इसके अंगों या उपाङ्गों की स्मृति रखते–रखते श्वास लेते या छोड़ते थे, उसी प्रकार अब इस द्वितीय चरण में देह को या इसके किसी भी भाग को स्मृति में न रखकर तथा इन्हीं सब को ध्यान में न लाते हुए केवल श्वास को ही लेना है या छोडना है। यदि वे देह के अंग आदि प्रथम अभ्यास के आरम्भ के समान ध्यान में पड़ें भी, तब भी इनमें मन को न जुड़ने देकर इनकी उपेक्षा ही करे, या इनकी बेखबरी रखते–रखते श्वास लेना और छोड़ना आरम्भ करे। जैसे–जैसे देह के अंग स्मृति या याद में नहीं आयेंगे और श्वास–क्रिया ध्यानपूर्वक या स्मृतिपूर्वक चलती रहेगी तो शनैः–शनैः जो

मन देह के अंगों की स्मृति में लग रहा था वह अब संसार के प्राणियों की यादें या संस्कार जगाने लगेगा। उनकी स्मृतियां जगा–जगा कर कहीं उन्हीं से होने वाले संशयों में पड़ेगा; कहीं कोई काम या इच्छा जन्मायेगा। कहीं किसी के व्यवहार की याद करके क्रोध जन्मायेगा। खाली तो रहने का अभ्यास नहीं। इन्हीं मिथ्या विकारों में बहता–बहता श्वास को लेने तथा छोड़ने वाला होगा। यदि आप इनसे ढीले रहकार सरकना या बचना चाहेंगे तो यह सुस्ती या आलस्य या निद्रा जैसी अवस्था में आपको डालकर श्वास लेगा और छोड़ेगा। यही मन का, रजोगुण तथा तमोगुण में बने रहने का संसार में स्वभाव बन गया है।

अब यहाँ आप का यह कर्तव्य है कि आप अपनी स्मृति या होश को सही रखकर श्वास लेने और छोड़ने के कर्म में इतना सावधान रहें कि इन सब विकारों में जाने वाले मन को अवकाश ही न मिले कि वह इनको जगा–जगा कर श्वास लेवे और छोड़े। जैसे कि कीचड़ वाले मार्ग पर सावधानी के साथ पाँव उठाते और धरते व्यक्ति का मन किन्हीं अन्य बातों में या यादों में नहीं जाता क्योंकि गिरने के कष्ट का भय मन को सब ओर से सम्भाले रखकर ही कीचड़ में पाँव उठाने और धरने के कर्म में लगाये रहता है। इसी प्रकार केवल ध्यान या स्मृति को जगाये रखकर श्वास

लेने और छोड़ने से मन में आते हुए व्यक्तियों के मित्र, वैरी आदि के दृश्य, या उनकी दृष्टियां तथा संशय, काम तथा क्रोध आदि विकार सब सम्भल–सम्भल कर, स्मृति या ध्यान से श्वास लेने और छोड़ने में लगे व्यक्ति द्वारा त्यागे जा सकते हैं। इनके त्यागने का अभ्यास होने पर इन से मुक्त मन शुद्ध, पवित्र श्वास ही लेगा। इसी से सब प्रकार की सुख, शान्ति और बाहर संसार में निर्विरोध जीवन का आनन्द भी प्राप्त होगा। मस्तिष्क हल्का होकर स्वस्थ होगा।

मन एक समय में किसी एक ही काम को कर सकेगा। यदि इसे आप स्मृति या याद को टिका कर श्वास लेने और छोड़ने में लगाये या बाँधे रखेंगे तो यह जन्म के अभ्यास या आदतों के वशीभूत हुआ–हुआ मिथ्या या बिना प्रयोजन दूसरों के बारे में मिथ्या दृष्टियों में नहीं पड़ेगा; वैसे ही मिथ्या संशय और काम, क्रोध आदि को भी नहीं जन्मा सकेगा; और इसी प्रकार मिथ्या अनन्त कर्तव्य सम्बन्धी विचारों में भी खोया न रहकर अपने श्वास को सही तथा स्वस्थ ढंग से चला कर आप को लम्बे समय तक बने रहने वाले सुख तथा शान्ति को प्रदान करेगा। जैसे आप ने अपने श्वास में, इसके लेने तथा छोड़ने में, अपनी स्मृति या ध्यान या होश बनाये रखकर मिथ्या दृष्टि, संशय, काम,

क्रोध तथा आलस्य (सुस्ती) या निद्रा जैसी अवस्थाओं को टाल–टाल कर श्वास चलाया है और यत्नपूर्वक सब विकारों को टालते रहे हैं, उसी प्रकार अन्य भी बहुत से मन के राग, द्वेष तथा मोह, मान आदि बन्धनों से आप अपने आप को सम्भाले रखकर श्वास ले और छोड़ सकते हैं। इस प्रकार मिथ्या चिन्ता से मुक्त रहेंगे।

मन का यह स्वभाव है कि यदि इसे इसी की एक अवस्था से आप सम्भालना चाहेंगे तो झट यह कोई वैसी ही दूसरी अवस्था में बदल कर खड़ा हो जायेगा। इस प्रकार यह अपनी भिन्न–भिन्न राग तथा द्वेष आदि संसार में ही बाँधने वाली अवस्थाओं में बना रह कार अपनी या जीव की सत्ता (हस्ती) को अनुभव करता है। इसकी इन अवस्थाओं के न रहने पर मन अविद्या या अज्ञान में पड़ा–पड़ा अपना विनाश सा देखकर पुनः–पुनः उन्हीं संसार के संस्कारों को जगा–जगा कर जीव को मिथ्या काम, क्रोध आदि द्वारा संसार में ही बाँधे रखता है। संसार में ही बने रहना इसे भाता है।

अब आप इसी प्राण के देव का सहारा रखकर इसी के संग से अपने आप में रहकर इन सब राग, द्वेष, मान, मोह तथा अविद्या आदि सब प्रकार की अवस्थाओं को भी टालते हुए शुद्ध रीति से श्वास को चलाते रहें। ऐसे अभ्यास के

दीर्घ काल तक करते रहने से शनैः–शनैः मन इन सब से मुक्त होकर संसार में भी जीवन मुक्ति की तृप्ति तथा आनन्द को अनुभव करेगा।

जब किसी भी सांसारिक सुख की स्मृति या याद में मन बिना विचार के बहता रहता है; उस सुख में उसका बँधा हुआ मन उस मिथ्या सुख को भूलता ही नहीं तो यही अवस्था राग नाम के बन्धन की सक्रिय है; और मनुष्य को बिना विचार के, बिना उसके दुष्परिणामों को समझे, उसी थोड़े सुख में बाँधे रखती है। आप इस बन्धन की सक्रियता की (कर्म में लगाने वाली) अवस्था को पहचान कर इसमें ही बहते–बहते श्वास को न चलाकर, श्वास में ही अपने आपको जोड़े रखकर या स्मृति या ध्यानपूर्वक श्वास चलाने के यत्न में लगाये रखकर इस राग की अवस्था की भी अवहेलना करने का यत्न बनाये रखें। मन तो एक ही है; एक समय एक ही कार्य कर सकेगा। यदि राग या उसके विषय के सुख की स्मृति या याद में बहता रहा तो श्वास भूल में ही चलेगा। जैसे निद्रा में भी बेखबरी में श्वास बहता है परन्तु यदि श्वास को स्मृति या होशपूर्वक चलाने के कार्य में मन लगा है तो उसे राग के विषय को भूलना पड़ेगा। वैसे ही उसके सुख में भी नहीं खोया रहना होगा। तो बस! अपने श्वास के देव को सम्भाले रखकर इस राग बन्धन को

त्यागने का ही यत्न रखा जाये।

इसी प्रकार द्वेष के बन्धन को भी टालता हुआ साधक पुरुष श्वास को पवित्र रीति से चलाने का अभ्यास करे। जैसे सुख की वस्तु मन से नहीं उतरती; क्योंकि उसे पाने के लिये मन सक्रिय रहना चाहता है। उसी प्रकार दुःख देने वाली वस्तु भी मन से शीघ्र नहीं उतरती; मन उसे दूर करने या रखने के लिये उसकी भी स्मृति बनाये रखकर, उसे टालने या नष्ट करने के लिये सोचों, विचारों में खोया रहता है। यही द्वेष नाम का बन्धन है। जब इसकी धारा साधक को समझ में पड़े तो श्वास में ही स्मृति या होश टिकाकर, इसे भी टाल दे। इसी प्रकार मोह की अवस्था या बन्धन है। 'जो चाहिये था वह तो मिला या हुआ नहीं; और जो नहीं चाहिये था वह आन पड़ा', इस के विपरीत कुछ भी आन पड़ने पर मन मिथ्या हुए हुवाए के चक्करों में तथा मिथ्या साचों या विचारों में पड़ा–पड़ा चिन्ता में खोया रहता है। इस अन्धकार की सी अवस्था को भी मन में, अपने समय पर बहती हुई को पहचान कर श्वास में ही समझे या ध्यान या स्मृति रखता हुआ साधक पुरुष त्यागने या टालते रहने के यत्न में लगा रहे। यदि सारा ध्यान या स्मृति (याद) श्वास लेने और छोड़ने के ही कार्य में लगी हुई है तो मन को कहाँ अवकाश मिलेगा कि व्यर्थ ही मोह की कीचड़ में

धंसा–धंसा चिन्ता में डूबा रहे; जैसे राग, द्वेष तथा मोह के बन्धनों की उपेक्षा केवल श्वास लेने और छोड़ने में अपनी स्मृति या ध्यान लगाये रखकर की जाती है, वैसे ही यदि कहीं बैठे–बैठे सुख का अनुभव होने लगे और मन सुख को लेने या उसका अनुभव करते रहने में ढीला पड़ने लगे तो श्वास लेने तथा छोड़ने के कार्य में तब स्मृति या याद ढीली पड़ जायेगी; और श्वास का आना–जाना तो भूल में ही होगा। तब, ऐसी अवस्था में अभ्यास में लगा हुआ प्राणी अपनी श्वास क्रिया में ही यदि स्मृति रखकर श्वास के आने तथा जाने के कार्य को करने में लगा रहे तो सुख से भी बेखबर रहता हुआ साधक सुख के बन्धन को भी पार कर लेगा।

जैसे सुख की उपेक्षा करते हुए अपने श्वास को लेने तथा छोड़ने में ध्यान रखना है वैसे ही दुःख की अवस्था में दुःख का अनुभव होने पर अपना मन इसी की उलझन में पड़ा श्वास को भूल में ही चलाना चाहे, तो तब श्वास में ही ध्यान या स्मृति रखकर इसी के कार्य को करने की लगन से दुःख की भी उपेक्षा करने में साधक पुरुष यत्न रखे। जैसे कोई कृषि (खेती) के कार्य में लगा हुआ जन कड़ी धूप या ठण्डी में भी हल चलाता है, हल को सही प्रकार से चलाने में लगा हुआ ठण्डी या गर्मी के दुःख को भी नहीं गिनता।

उस दुःख की भी उपेक्षा या अवहेलना स्वभाव से ही करता जाता है। वैसे ही अभ्यास में रत मनुष्य अपने दुःख की भी परवाह या चिन्ता न करता हुआ अपने श्वास को लेने और छोड़ने के कार्य में लगा रहने पर दुःख की भी उपेक्षा करता जायेगा, दुःख भी गिनती में नहीं पड़ेगा। इस प्रकार इस साधना या अभ्यास के दुसरे चरण में सब प्रकार के काम, क्रोध आदि विकार; वैसे ही इन्हीं विकारों की जड़ या कारण राग, द्वेष आदि बन्धन तथा इन सब विकारों तथा बन्धनों का मूल रूप जो सुख तथा दुःख का अनुभव है; इस सब प्रकार की उलझन से, उद्योग में लगे रहने वाला तथा श्वास का सहारा रखने वाला साधक जीवन काल में ही मुक्त होकर देख लेगा। यह प्राणापान की क्रिया जीवन काल में ही मुक्ति पाने के लिये या मुक्ति के अनुकूल जीवन बनाने के लिये मुख्य साधना का ही एक अंग है।

प्रसंगवश यहाँ थोड़ा यह सत्य भी ध्यान में रखना होगा कि ऊपर कहे गये सब विकार तथा बन्धन सब संसार के प्राणियों में अपना चक्कर या दौर सदा बनाये रखते हैं। जीव इन्हें जानने तथा पहचानने का उद्योग बनाये रखने का कष्ट नहीं करना चाहता। सब जीवों में छिपे–छिपे ये सब प्राणियों को बिना विचार के संघर्ष तथा विविध मिथ्या कर्मों में लगाये रखते हैं। जीव इनके बन्धन से छूटने की बात तक भी नहीं

सोचता। केवल दूसरों के संसार में अपनी 'मैं' या 'मान तथा अहंकार' को आदतों के वशीभूत बना रहकर बनाये रखना चाहता है। अब ऐसी सांसारिक स्थिति में विचारशील साधक पुरुष को इन्हीं सब मिथ्या प्रेरणा देने वाले संसार में, तथा दूसरों के साथ संघर्ष में डालने वाले कारकों अर्थात् कारणों को अपने ध्यान द्वारा समझने तथा पहचानने का उद्योग भी यथासमय बनाये रखना है। जब ये सब विकार तथा बन्धन हमारी समझ में पड़ने लग जायेंगे तो इन्हें विचार द्वारा अपने हित को ध्यान में रखते हुए त्यागने की योग्यता भी प्राप्त होगी। ध्यान द्वारा त्यागने के समान, प्राणापान स्मृति द्वारा भी केवल अपने मन को श्वास लेने और छोड़ने में भी लगाये रखकर इनकी उपेक्षा की जा सकेगी। इस प्रकार जब श्वास–श्वास में यह पहचाने जायेंगे तथा छूटते जायेंगे तो ऐसा उद्योगी साधक अपने आप को सदा मुक्त ही देखेगा तथा मुक्ति की प्रसन्नता तथा तृप्ति में (अपने आपको) पायेगा। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण जी ने पाँचवें अध्याय के अन्त में इसी क्रिया की संक्षेप से चर्चा की है; तथा इस क्रिया में सफल व्यक्ति को सदा मुक्त रहने वाला बतलाया है। इस प्राण और अपान को सम करने के अभ्यास रूप में जो यह प्राणापान स्मृति इस आध्यात्मिक जीवन पद्यावली नाम वाले

ग्रंथ के भाग रूप से ही इस ग्रंथ में प्रविष्ट की गई तो इसका विशेष तात्पर्य यह है कि जो भी व्यक्ति अपने जीवन के मुख्य उद्देश्य या प्राप्त करने योग्य उत्तम फलस्वरूप सकल संसार की उलझन से निवृत्ति रूप शास्त्रों में कहे गये मुक्ति के फल को पाना चाहता है, उस व्यक्ति के लिये जीवन की साधना रूप में तीन कर्तव्य सम्मुख रखने के हैं।

प्रथम तो संसार में केवल दूसरों के सहारे अथवा दूसरों के संग वाला जीवन जो कि केवल अपने आप में, या पुनः एकान्त में धारण करने के लिऐ भी भारी सा प्रतीत होता है, उस जीवन को धीरे–धीरे ध्यान विचार द्वारा समझ कर, और उस जीवन से होने वाले सुख और तृप्ति को अनित्य या सदा न बने रहने वाला पहचान कर उससे मन की मिथ्या आशा या तृष्णा से निवृत्त होना अर्थात् टलना या लौटना। उसमें व्यर्थ समय व्यतीत करने को रोक कर अपने तथा दूसरों के जीवन की खोज करनी तथा 'यह सांसारिक जीवन अन्त में कहाँ ले जाकर पटकता है ?' इस सत्य को भी दृष्टि में भली प्रकार से बसाना। पुनः उस बाहर के जीवन के मिथ्या सुखों से मन को मोड़ कर उसी से बचे हुए समय को एकान्त में अपने जीवन का अध्ययन करने में लगाते हुए एकान्त में पर्याप्त समय को व्यतीत करने का अभ्यास करना। इसी से प्राणापान स्मृति रूप क्रिया के

अभ्यास द्वारा जिन–जिन विकारों तथा बन्धनों आदि को आप त्यागना चाहते हैं, उन सब का आप को अपने अन्दर ही ज्ञान होगा। यही अन्दर का ज्ञान, अन्दर की विद्यायें हैं। विकार अन्दर अन्तःकरण (मन) में बहते हुए दीखेंगे; उनकी परेशानी या दुःख अनुभव में आयेगा, उन सब का मनुष्यों को या जीव साधारण को बाध्य या लाचार बना कर मिथ्या कर्मों मे पटकने के बल का अनुमान या अन्दाज़ा मिलेगा; और साथ ही साथ इनसे मुक्त होने या अपने को इनके त्याग से सुखी बनाने का दृढ़ संकल्प भी होगा तथा प्रेरणा भी मिलेगी।

इस सब का यही तात्पर्य है कि प्रथम अन्दर के सही ज्ञान द्वारा इन सब विकारों तथा बन्धनों और इनके मूल या जड़ रूप से अनुभव में आने वाले सुख या दुःख नाम के कारकों (कारणों) का भी पता चलेगा। और पता पड़ने पर ज्ञान द्वारा ही त्याग और उनके अल्प वियोग का दुःख सहन करना रूप तप द्वारा इन्ही सब को त्यागने का बल भी प्राप्त होगा। परन्तु प्रथम आवश्यकता है सत्य के ज्ञान की; अर्थात् असलीयता क्या है ? तब बल द्वारा सही मार्ग को अपनाने के उद्योग की। यह होगा एकान्त में शान्त होकर ध्यान करने से। ध्यान से असलीयता का ज्ञान होगा। उसी ज्ञान से सही प्रेरणा प्राप्त होने पर मनुष्य से उस सब उलझन या बन्धनों की जड़ को पटकने के लिये

उद्योग बनेगा। इसलिये प्रथम सत्य ज्ञान को ध्यान द्वारा उपजाकर इन सब को ध्यान में आसन पर ही त्यागने का यत्न करना।

पुनः जब भोजन उपरान्त (भोजन करने के पश्चात्) ध्यान के योग्य अभी शरीर या मन की अवस्थ नहीं है तो शान्त आसन पर बैठकर बिना विचार के या ध्यान के भी, श्वास–श्वास में लेते और छोड़ते हुए इन विकारों और बन्धनों को त्यागने का अभ्यास करना। इस प्राणापान क्रिया में विचार, ध्यान या सत्य की खोज या छानबीन करने के उद्योग की आवश्यकता नहीं। यह केवल भोजन के उपरान्त सुख से बैठे–बैठे मिथ्या तृष्णा के विचारों में अपने मन को न लगाकर सही रूप से अपने समय का सदुपयोग करने के लिये है।

इसी प्रकार दूसरा प्रकार है जब कि मनुष्य कर्म क्षेत्र में होगा। भले वह अपने शरीर की शुद्धि के कर्म करने में लगा है या अन्य खाने–पीने आदि के भी कर्मों में लगा है। और भी यदि वह दूसरों के संग व्यवहार या वार्तालाप में ही व्यस्त है, जो व्यक्ति इन सब कर्मों में भी थोड़ी अपने पर अन्तर्दृष्टि रखे तो उसे इन कर्मों में भी इन्हीं सब काम, क्रोध आदि विकारों तथा राग, द्वेषादि बन्धनों की खबर मिलती रहेगी। इन सब कर्मों में भी इनका चक्र या दौर (दौरा) शान्त नहीं होता और ये सब मनुष्य की आवाज या शब्दों

को भी अपने ही ढंग से बिना भविष्य का हित सोचे बुलवाते हैं और मनुष्य के बाहर के जीवन को भी या दूसरों के संग को भी समय पाकर दुःखमय बना देते हैं। मनुष्य उनकी मिथ्या प्रेरणाओं के समय यह सब समझ नहीं पाता। सोया–सोया, खोया–खोया सा संसार में बहता रहता है।

अब तीसरे स्थान का कर्तव्य इस जीवन को आध्यात्मिक या आत्मा के अनुकूल बनाने के लिये यही है कि सब अपने शरीर, इन्द्रिय या मन के कर्मों में तथा भावों में भी बुद्धिमान् अपनी होश या स्मृति टिकाकर रखे और जब–जब ये सब अपना बल प्रकट करने को हों तो जैसे ज्ञान द्वारा तथा प्राणापान स्मृति द्वारा इनको त्याग दिया जाता है, वैसे ही कर्म करते–करते भी त्यागने का अभ्यास बनाये रखने से अन्दर और बाहर का जीवन पूर्ण रीति से आध्यात्मिक या आत्मा के अनुकूल बन जायेगा। ऐसे पुरुष की प्रसन्नता कभी भी कम नही होती। मृत्यु का भय तक भी उसे नहीं रहता। आपने आप में अकेले में हो या सब में, वह सदा अपने अन्दर के आनन्द में रहता है। इस सब का सार यही है कि प्रथम ज्ञान द्वारा, पुनः प्राणापान स्मृति द्वारा और सब कर्मों को भी स्मृति से करने का अभ्यास या आदत डालकर इन सर्व स्थानों पर अपने प्रभाव से अपने अधिकार में रखने वाले विकारों और बन्धनों तथा इन्हीं के कारण अल्प सुख–दुःख को भी त्यागने का यत्न बनाये रखे। यही

सब जीवन आध्यात्मिक या आत्मानुकूल सिद्ध होगा जिसमें कि मुक्ति स्वभाव से बनी रहेगी। बाहर उलझन से मुक्ति का अर्थ है अन्दर आत्मा में स्थिति। पुनः आत्मा में बिना बाहर की खींच के अपने आप में अति उत्तम, सर्व भयों से रहित सुख भी प्राप्त होगा और वह सुख होगा सनातन या सदा बना रहने वाला। इसी के लिये यह सब साधना कही गई है और इस आध्यात्मिक जीवन पद्यावली ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य भी यही है। अपनी प्रत्येक अवस्था में इन्हीं सब विकारों तथा बन्धनों को पहचानते रहना और त्यागने का यत्न बनाये रखना। इससे जीवन के पग–पग पर उलझन से छुटकारे का अवकाश बनता रहेगा; और अन्त में यही सब ऐसे पुरुष का स्वभाव ही बन जायेगा

हरिः ॐ तत्सत्!

Mindful Respiration
or
Pranapan Samriti

Pranapan Smriti means mindful respiration i.e. performing the process of inhaling and exhaling with mindfulness. In the holy scriptures, inhaling is called *'Apana'* and exhaling is called *'Prana'*. In the body of a common human being, the process of breathing goes on without knowledge or even unknowingly as it flows during sleep. The mind of such a person, trapped in worldly entanglements is always lost in his own affairs and he remains busy in other activities. He is not even aware of his breathing process. Of course, during brisk walking, or in a state of illness, when breathing becomes difficult and fast only then one may be aware of it. Otherwise, the self-consciousness conducts the process of respiration in all the living beings in the same manner in order to perform routine activities of the body. This is sufficient only to keep the wheels of life moving. But a spiritual striver, wishing to attain salvation (deliverance), should conduct the process of breathing with mindfulness during his free time

after taking meals. With this, normal inhaling and exhaling will also result in blessedness. The body feels blessed only when inhaling and exhaling becomes normal. A man inhaling deeply but remaining entangled in mental tension, doubt and desire etc., bound by his self-interest and lost in his thoughts, does not find the time to exhale. The entangled and heldup breath gives pain and harms the body by making it sick. Similarly, for a person lost in thoughts etc. for a long time, if inhaling is short in a state of tension, selfishness, doubt and fear, but if exhaling is long, it will cause pain to his organs and his physical health will deteriorate. In the absence of normal breath, the parts and inner organs of the body do not get enough energy to conduct their function completely. Blood does not circulate in a proper way in the organs. The body is deprived of the nutrients from the food consumed because the only power for doing all this work i.e. carrying out the assimilation of food etc., is in inhaling and exhaling. But this is not conducted properly because one does not know, in what type of fetters the mind is caught or how it is entangled in the vicious cycle of numerous pleasures and pains.

Again the mind is badly entangled in doubts and thoughts whether to do it or not and one does not even find time to conduct the mindful respiration properly. Similarly, it is not known, in which bonds of affection, malice, ego, delusion, fetters etc., the mind is entangled and so it is lost in thoughts of nowhere. It is self-consciousness hidden inside alone that conducts the respiration only to maintain life. But even this process of entangled breath is a sinful act which brings punishment in the form of disease and sorrow etc. A spiritual striver should personally test this reality as to how the respiration is halting, suppressed and difficult in a state of tension, doubt, fear etc. He himself will come to know of it and realise it. Whenever he is bound by tension etc. or by false desires, he should conduct a surprise test to find out how the respiration is being conducted, and then he will realise that it is not being conducted in a healthy and useful manner. It is sometimes short like an ant and sometimes extremely long like the period of sorrow and thus it flows while harming the organs. It prevents the proper digestion of food and smooth circulation of blood. So we have

to remove this defect through mindful respiration so that all the inner organs of the body can acquire energy from it to conduct their respective functions properly. But this will be possible only when the mind, too, is healthy. A healthy mind means a mind free from fetters. Such a healthy mind alone can conduct mindful respiration. The mind will be free from fetters only when it is free from the concept of joys and sorrows and from doubt, lust, anger etc., and also when it is free from the thoughts of pleasures and pains of the past, present or future. So much so that one should continue with mindful respiration uninterruptedly despite joys and sorrows or other fetters. This will enable all the parts of the body to acquire energy from respiration to make the body healthy and to bring mental happiness. The method of conducting systematic mindful respiration is as follows :

First of all one should sit in a state of *Padmasan* (Lotus Seat) while keeping his head, neck and spinal cord erect and start inhaling and exhaling mindfully remaining steadfast. If, initially, it is painful to sit in *Padmasan*, (Lotus

Seat), then one may sit in any other convenient posture while keeping all the parts of the body erect as mentioned above. If one feels pain in knee joints, one may sit on a chair with legs dangling below, but his spinal cord should be kept erect as advised above. However, one should keep on trying to sit in *Padmasan* (Lotus Seat). While doing so, one should keep a table in the front for support to avoid falling under the influence of sleep. It is not advisable for a healthy man to sit at a higher place while breathing mindfully as there is the risk of fall under the influence of sleep.

In this way, while on *Aasan* (Seat) one should be fully aware when one is inhaling. The spiritual striver should be fully aware of the time consumed in inhaling and similarly in exhaling. Awareness should be constant for the whole duration of inhaling and exhaling. One should not be without this awareness even for a single moment. When one is not aware of one's breath, it means the mind has slipped and has gone away to entanglements elsewhere. Instantly, one should alert the mind, remember and revert back to mindful respiration. One should be fully aware of inhaling and

exhaling. One should mindfully draw the breath in and then release it. Mindfulness should not be allowed to lapse even for a moment. This, by power or energy, is the only infallible method to control the mind. Thus, one should not wilfully try to prolong the breath nor shorten it nor stop it. One should not try to interrupt and should let the breath flow in and out, howsoever long or short in itself it may be. But inhaling and exhaling should be conducted mindfully. One should not be unaware i.e. one should be fully aware while inhaling and exhaling. He should not be distracted by the comfort of sloth and sleep. Mindful respiration should be uninterrupted.

Now slowly and slowly, while mindfully inhaling and exhaling, the mind's attention should be shifted to the body. One should inhale and exhale while observing all the inner organs of the body one by one. Similarly, one should feel the stomach full of food while inhaling and then exhale while feeling the full stomach. Similarly, while feeling about the stomach, keep the mind fully awake, and after watching it for a short time one should conduct mindful respiration.

Similarly, one should shift one by one to other inner organs like liver, gall bladder, large intestine, small intestine, kidneys, bladder, lungs, heart and brain etc. and mindfully inhale and exhale while feeling them. The mind should be engrossed in this process so completely as to fully forget about the world and all worldly affairs. Then one will be busy in providing full energy to the body. One should keep on inhaling and exhaling while being aware of all the other parts of the body. One should inhale and exhale twice or thrice keeping awareness of each part of the body by turn. In this way, one should continue to do so for half the time one intends to sit and carry on mindful respiration by being aware of the organs in the body. It means that one should give half the time that one wishes to devote for this mindful respiration, and inhale and exhale while being aware of all the organs of the body.

Here it is very important to remember that while feeling about the organs of the body, the breathing process should not be delayed i.e. one should not be so engrossed in feeling the organs as to delay the breathing process.

Now, if half the time to be devoted is over, one should start forgetting the body i.e. one should inhale and exhale without feeling the body and he should let the body and its inner organs go out of one's mind. In this way while one has spent some time in inhaling and exhaling, the mind will start activating. Sometimes with the remembrance of one's child, its view will be produced and sometimes of others. The mind may thus get entangled. In this state, the respiration will either be halting or conducted unknowingly. On such an occasion, one should realise the fact that one has sat for the process of mindful respiration and not for thinking about anything else. It is not the time to think about worldly worries. One should start the mindful respiration instantly and forget children etc. If the understanding is awakened through mindful respiration, children etc. will automatically be forgotten. If the mind remains entangled in the children etc., the respiration will be conducted unawares and unknowingly as the mind can do only one thing at a time. One should mindfully observe one's respiration and renounce everything else on this occasion. Mind will never

remain idle and if the mind is engrossed in mindful respiration, it will not let any other thing crop in. Just as one has ignored the view of the child through mindful respiration, similarly one must practise the avoidance of the evil of doubt, lust, anger, wrath, sloth etc. that dominate the mind and distort the breathing process. Thus, one will be accustomed to pure breathing. After this, if one is reminded of worldly pleasures, one may get entangled in *Raga Chitta* (mind with attachment). Recollecting the worldly pleasures, one will then forget the breathing process. Instantly, one must become alert and should be so engrossed in mindful respiration that worldly pleasures should disappear from the mind. Similarly, a pain-giving thing may also entangle the mind and in such a state, again, the above mentioned method should be adopted i.e. one should be engrossed in mindful respiration and bid farewell even to *Dwesha Chitta* (mind with aversion). Similarly, one may be lost in attachment, or in sorrow etc. In such a state of mind with delusion, one must not give up inhaling and should come out of the mud of attachment through mindful respiration. Thus, anything that entangles the mind will distort the

respiration. If one does not let it be distorted, all false attachments and fetters will then automatically be avoided. This is what is called mindful inhaling and mindful exhaling. If one keeps on concentrating on mindful respiration in this manner, all the evils or fetters like attachment, aversion, delusion etc. will have no opportunity for their manifestation in the mind.

Similarly, if the mind is entangled in worldly pleasures, it will lose awareness of respiration and will not come to know about inhaling and exhaling. If the respiration is mindful, one will forget the worldly pleasures and the respiration will be pleasant. The same is the case with pain. If one becomes worried owing to sorrow, one loses awareness of respiration and if the respiration is mindful, one will forget the sorrow too. In this way, one must, howsoever, try to devote as much time as one can to this process of mindful respiration i.e. from one to three hours and then keep on increasing it as per one's strength. Then it will bring greater benefit rather than harm. Afterwards, whatever time remains after necessary physical activities, it should be devoted

to the mindful respiration. If the mind is idle, it will indulge in wasteful activities. But if the food has been digested and one feels light in the body, it is better to sit in meditation. It is most important to free the mind from all the fetters mindfully with knowledge. If one can be free from these fetters through knowledge, one can carry on mindful respiration on other occasions too. When one entangles his mind in self-interest, these fetters will grow strong and if one realises the pettiness of this self-interest, fetters will disappear and salvation will become natural. One must forcefully get freedom from these fetters through mindful respiration. However, if one knowingly turns away from these fetters, it does not matter even if the respiration is carried on unknowingly or unawares. But one must not sit for meditation before five or six hours after meals till the food is fully digested otherwise it is not beneficial. However, one may sit for mindful respiration either immediately after taking meals or after taking rest after meals depending upon one's convenience.

This is the detailed description of mindful

respiration. The spiritual striver can, thus, practise it mindfully without any doubt or fear after understanding its technique of conducting it in detail. Even if the doubt persists, one must not worry. One should start with whatever one has understood after the study of this chapter or one should clear one's doubts by talking to or discussing with someone who is experienced. By doing this exercise at the proper time, one will understand its technique without any doubt. In solitude, this exercise is a blessing in itself. But one should keep on reading this chapter carefully again and again. Then one will understand everything about what one has to do for this mindful respiration.

Hari Om Tat Sat !

Spiritual Books by

Swami Dayanand 'GIRI' Ji Maharaj

- **Spiritual Discourses, Vol. I A & I B**
- **Spiritual Discourses, Vol. II A & II B**
- **Verses of the Divine Spiritual life (with explanation)**
  Written by Swami Ji himself
- **A Dictonary / Panorama of Spiritual Science-Adhyatam Vidya**
- **Daily Meditation on the Divine Spiritual Life** (Compiled by Dr. B.N. Mathur)
- **Biography of Revered Swami Dayanand Giriji Maharaj**
- **Verses of the Divine Spiritual Life Part-I**
  (Canto of Conduct)
- **Verses of Divine Spiritual Life Part II**
  (Canto of Meditation & Worship)
- **Verses of Divine Spiritual Life Part III**
  (Canto of Spiritual Phsychology)
- **Spiritual Discourse on Ohm & So'ham** (In Hindi & English)

ॐ

Available from:

G.C. Garg
99, Preet Nagar, Ambala City-134003 (Haryana)
Tel. 0171-2552761